74

जनवरी-जून, 2018

मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

Scanned with CamScanner

अनुक्रमणिका

भास्कराचार्य रचित गणितीय कृति लीलावती : एक अवलोकन 5
रामप्रसाद

आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में छायावाद 23
कामिनी

बौद्ध धर्म-दर्शन और मार्क्सवाद के साथ दलित साहित्य का अंतर्सम्बन्ध 32
दीपक सिंह

भारतीय ज्ञान परम्परा में कामशास्त्र का इतिहास 38
राघवेन्द्र मिश्र

धर्म और विज्ञान का अंतर्विरोध 59
अनिल कुमार तिवारी

कमलेश्वर के 'काली आंधी' उपन्यास में स्त्री-विमर्श 68
संजीव कुमार विश्वकर्मा

शास्त्रीय संगीत में लोक संगीत के तत्त्व 73
बृजेश मिश्रा

गाँधी के राष्ट्रवाद की अवधारणा 83
पंकज सिंह

भरहुत की कला में प्रतिबिम्बित लोक जीवन 94
कृष्ण देव पाण्डेय

समकालीन समाज-दर्शन और स्वामी विवेकानन्द 103
शैल कुमारी

मध्यप्रदेश की संस्कृति में छतरपुर अंचल की भूमिका 118
विशाल विक्रम सिंह

एशियाई परिदृश्य और भारत-चीन संबंध 128
नेहा निरंजन

'उस जनपद का कवि हूँ' : कविता के सरोकार 135
दुर्गेश वाजपेयी

महिला सशक्तीकरण में महिला पुलिस की भूमिका के प्रति महिलाओं का दृष्टिकोण (सागर नगर के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन) 146
विवेक मेहता

Scanned with CamScanner

आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में छायावाद

कामिनी

आधुनिकता शब्द अंग्रेजी के मॉडर्ननिटी (Modernity) का पर्याय है। यूरोप में सोलहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक 'आधुनिक' शब्द का प्रयोग 'वर्तमान' के पर्याय के रूप में किया जाता रहा था। पुनर्जागरण के पश्चात आधुनिक शब्द से कई विशेषण जुड़ते चले गए और उसका अर्थ विस्तार होता गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक आते-आते आधुनिकता का प्रयोग 'सुधार', 'प्रगतिशीलता' व 'तार्किकता' के अर्थ में होने लगा। भारत में भी आधुनिकता का संबंध नवजागरण से ही जुड़ता है। भारत में अंग्रेजों का वर्चस्व बढ़ने के साथ ही सामाजिक व आर्थिक ढाँचे में गंभीर उथल-पुथल देखने को मिलती है जिसके फलस्वरूप एक नया सामाजिक वर्ग आकार लेता है। अंग्रेजों ने अपनी वर्चस्व स्थापना के क्रम में भारत में जो भी कार्यक्रम लागू किए उनका परिणाम एकांगी न रह सका बल्कि यह बहुआयामी सिद्ध हुआ, मसलन पश्चिमी शिक्षा, प्रेस का विस्तार, रेल आदि के प्रसार ने भारतीयों के लिए दुनिया भर के ज्ञान-विज्ञान का रास्ता खोल दिया। भारतीयों ने तर्क और विज्ञान की नई रोशनी में अंग्रेजी शासन के साथ भारतीय समाज की आंतरिक बुराइयों को भी देखना शुरू किया। 1857 के महान स्वतंत्रता संग्राम ने भारत में नवजागरण की प्रक्रिया को काफी तेज कर दिया जिसका परिणाम हमें बड़े पैमाने पर शुरू हुए सुधार कार्यक्रमों के रूप में दिखाई पड़ता है। आज हम यह बात प्रामाणिक रूप से कह सकते हैं कि भारतीय नवजागरण अपने अतीत के प्रति अत्याधिक मोह-ग्रस्त होने के कारण सदैव द्वंद ग्रस्त रहा जिसका असर हमारे साहित्य पर भी दिखाई पड़ता है। हमारी आधुनिकता ने भी इसी द्वंद्व के बीच आकार लिया है जिसके अच्छे और बुरे दोनों परिणाम हमारे सामने हैं। यहाँ 'बुरे' से इशारा आधुनिकता की कोख से जन्मी सांप्रदायिकता की तरफ है। भारत में आधुनिकता के आगमन की यह अवधारणा पूरी तरह निर्विवाद नहीं है। इसको चुनौती देते हुए अक्सर यह सवाल उठाया जाता है कि यदि अंग्रेज भारत न आए होते तो क्या भारत में आधुनिकता न आती? इस सवाल के जबाब में यही कहा जा सकता है कि आधुनिकता एक प्रक्रिया है किसी भी समाज में जब आत्मसजगता, तर्क, विज्ञान, के साथ कर्ता भाव जागृत होने लगता है तो वह आधुनिकता की तरफ अग्रसर होता है। निसंदेह भारत में अंग्रेजों के जमने के पहले ही उपरोक्त स्थितियाँ बनने लगीं थी सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगालियों के साथ प्रेस का आगमन हो चुका था। साहित्यिक तथ्यों की खोज करें तो रीतिकाल में हमें आधुनिकता के लक्षण मिलने लगते हैं तो एक बात तो तय है कि अंग्रेज न आए होते तब भी आधुनिकता तो आती ही लेकिन उसका स्वरूप कैसा होता? यह प्रश्न आज निरर्थक है।

मध्य भारती-74, जनवरी-जून, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 23-31*

Scanned with CamScanner

भारतीय नवजागरण अपने कलेवर में युरोपीय नवजागरण से सर्वथा अलग है विभिन्न प्रदेशों में इसका स्वरूप अलग-अलग रूपों में दिखाई पड़ता है और यही हाल नवजागरण के साथ आ रही आधुनिकता का भी है। यह बंगाल में एक ढंग का, महाराष्ट्र में दूसरे ढंग का तथा हिन्दी क्षेत्र में इन दोनों से अलग ढंग का दिखाई पड़ता है। लेकिन नवजागरण के इन विभिन्न रूपों में एक समानता भी थी, वह यह कि भारतीय जनता को जागृत करने में सभी सहायक सिद्ध हुए थे और इसके फलस्वरूप उन्नीसवीं सदी में भारतीय समाज आधुनिकता की ओर उन्मुख हुआ था। रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में – ''भारत में आधुनिकता का प्रवेश उन्नीसवीं सदी में हुआ और उसके व्याख्याता राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानन्द, लोकमान्य तिलक, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि भारतीय थे।''[1]

राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में जो भी बदलाव हो रहे थे उसका असर साहित्य पर पड़ना भी स्वाभाविक ही था। आधुनिकीकरण के चरण के रूप में पत्रकारिता का विकास, साहित्य की अनेक विधाओं का प्रवर्तन, भाषा की दृष्टि से खड़ी बोली की प्रतिष्ठा आदि तत्व हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग से शुरू होकर द्विवेदी युग और छायावाद के साहित्य में प्रकट हुए। वस्तुतः आधुनिकता की प्रक्रिया क्रमिक रूप में निरंतर गतिशील प्रक्रिया है, इसलिए आधुनिकता की शुरुआत के लिए कहीं रेखा खींच कर इसे स्पष्ट नहीं किया जा सकता। जैसा कि केदारनाथ सिंह कहते हैं – ''वस्तुस्थिति यह है कि हिन्दी कविता में (और कमोबेश पूरी भारतीय कविता में भी) आधुनिकता कोई आकस्मिक घटना नहीं है बल्कि यह एक लंबी विकास प्रक्रिया का परिणाम है। मुक्ति आंदोलन के समानान्तर और कई बार उसके आगे-पीछे यह प्रक्रिया पुराने मूल्यों से टकराती हुई और उन्हें छिन्न-भिन्न करते हुए अपने ढंग से चुपचाप चलती रही है।''[2]

आधुनिकता-बोध के निर्माण की प्रक्रिया तीन स्तरों पर घटित होती है –विचार के स्तर पर, भाषा के स्तर पर और विधाओं के स्तर पर विचार के स्तर पर, देखें तो रीतिकालीन नखशिख परंपरा, नायक-नायिका भेद आदि को छोड़कर भारतेन्दु युगीन काव्य से ही हिन्दी जाति के जीवन के दुख-दर्द, ओज कर्मण्यता, जातीय गौरव, प्रेम सौहार्द और यथार्थ की अभिव्यक्ति का माध्यम कविता बनती है। रीतिकाल में जो सामाजिक जीवन उपेक्षित हो गया था, वह भारतेन्दु युग से पुनः प्रतिष्ठित होता है। भारतेन्दु युग में नारी शिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा और अस्पृश्यता को लेकर अनेक सहानुभूतिमूलक कवितायें लिखीं गई। ''बहुत हमने फैलाये धर्म, बढ़ाया छुआछूत का कर्म''[3] कहकर भारतेन्दु ने वर्णाश्रम का विरोध किया तो प्रताप नारायण मिश्र ने बाल विधवाओं की दीन दशा को इन शब्दों में प्रकट किया 'कौन करेजो नहिं कसकत, सुनि विपति बाल विधवन की'।

विचारों में परिवर्तन के साथ-साथ भाषा में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक था क्योंकि विचारों को उसकी सहज भाषा से पृथक नहीं किया जा सकता द्य पुराने संस्कारों को तोड़ने के लिए कवि ब्रजभाषा छोड़कर खड़ी बोली अपनाता है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में – ''भारतेन्दु से काव्यभाषा का आधार बदलता है। ब्रजभाषा से खड़ीबोली जहाँ क्रमशः द्विवेदी युग के प्रचलित अप्रस्तुत विधान के बीच से बिम्ब की नई पहचान उभरती है। जिस बिन्दु पर समस्त भावबोध एकबारगी जटिलतर होता है और संश्लिष्टता की ओर झुकाव बढ़ता है।''[4]

गद्य की जितनी भी विधाएँ समकालीन साहित्य में प्रचलित हैं, उसमें से लगभग सारी विधाओं का प्रवर्तन भारतेन्दु युग में ही होता है। सामान्य जनता तक अपनी बात को पहुँचाने के लिए इस युग के रचनाकारों ने गद्य की सभी विधाओं का प्रयोग किया, जैसे नाटक, उपन्यास, कहानी आत्मकथा आदि।

Scanned with CamScanner

भारतेन्दु युग से शुरू हुई सभी साहित्यिक प्रवृतियाँ अपने घनत्व तथा विस्तार के साथ द्विवेदी युग में आगे बढ़ती हैं। छायावाद तक आते-आते भाषा ,विचार आदि में एक प्रौढ़ता दिखाई पड़ने लगती है। छायावाद बीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों में भारत में हुए नवजागरण का काव्यात्मक रूपांतर है। विकासमान और संघर्षशील पूंजीवाद तथा पाश्चात्य संस्कृति, शिक्षा और साहित्य के निकट संपर्क या प्रभाव से भारत में वैयक्तिक अनुभूतियों, व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों की सीधी अभिव्यक्ति दिखाई पड़ने लगती है। पूंजीवाद के उदय और आधुनिक विकास के प्रारम्भ में व्यक्ति की बदली हुई सामाजिक स्थितियाँ कविता को रोमांटिकता की ओर ले जाती हैं। स्वचेतना, वस्तुगत प्रकृति के प्रति जिज्ञासा का भाव, सौंदर्य-प्रेम, परिवेश के प्रति असंतोष आदि रोमांटिकता के सारे तत्व छायावादी कविता में मिलते हैं। इस रोमानियत की वजह से हमें छायावादी कविता में जहाँ एक ओर स्वप्न और आत्मरति दिखाई पड़ती है वहीं दूसरी ओर विद्रोह और मुक्ति की अकुलाहट भी कविता का मुख्य स्वर बनती है। सांस्कृतिक पुनर्जागरण तथा राष्ट्रीय आंदोलन के उत्थान में मध्यवर्गीय रोमांटिकता का प्रमुख योगदान रहा है कविता के क्षेत्र में छायावाद के रूप में इन सबका ऐतिहासिक और तर्कसंगत प्रतिफलन हुआ है।

छायावादी काव्य तत्कालीन समाज में पैदा हो रहे आधुनिक भाव-बोध तथा उसके विरोधाभासों को अभिव्यक्त करता है। वह भारत की औपनिवेशिक पराधीनता तथा समाज में व्याप्त सामंती मूल्यों से मुक्ति का साहित्य है जिसमें जागरण तथा विद्रोह के भावों के साथ जातीय एकता व नवीन सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की आकांक्षा दिखाई पड़ती है। छायावाद में मिलने वाली व्यक्ति स्वतंत्रता की भावना का रूप आपने-आप में अनूठा है यह प्रयोगवाद या नई कविता के व्यक्तिवाद जैसा नहीं हैं। छायावाद में व्यक्ति स्वातंर्त्य की चाहत तत्कालीन समाज की पराधीनता से मुक्ति की लड़ाई से जुड़ी हुई है। निराला कहते हैं –

'मैंने मैं शैली अपनाई
देखा दुखी एक निज भाई
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे
झट उमड़ वेदना आई।'[5]

यहाँ एक बात साफ तौर पर रेखांकित की जा सकती है कि छायावादी 'मैं' सामाजिक मुक्ति व उसके दुख- दर्द को व्यक्त करने वाला सर्वनाम है। डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार – ''मुक्ति के प्रति आग्रह का तात्पर्य इस लौकिक सत्ता से परे किसी चरम सत्ता में विलयन से नहीं था बल्कि रूढ़ियों, अंधविश्वासों, गलित मूल्यों से मुक्त होना था।..... अपने आप को विलीन करने की प्रक्रिया ही स्वतन्त्रता तक ले जाती है। बंधन चेतना के मद्धिम पड़ने, बोध के संकीर्ण होने और चीजों के गलत मूल्यांकन का दूसरा नाम है। मुक्ति एक स्तर पर वैयक्तिक है, तो दूसरे स्तर पर सामूहिक, साहित्य में वैयक्तिकता के फलस्वरूप ही काव्यरूढ़ियों से मुक्त होने की बात कही गई है।''[6]

छायावादी काव्य में नारी को सौंदर्य-प्रतिमा के साथ सामाजिक जीवन की एक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है। यहाँ नारी दया की पात्र न होकर प्रेरक है। इस तरह देखें तो यह एक बदली हुई नारी चेतना है जो परिवर्तित होते हुए समाज के साथ प्रकट हो रही है। द्विवेदी युगीन नारी का त्याग छायावाद तक आते–आते अधिकार की मांग करने लगता है वह आदर्श की खोखली जमीन से यथार्थ की सतह पर उतरने को बेचैन दिखाई पड़ता है। छायावाद ही वह काव्य आंदोलन है जिसमें एक नारी इतना साहस अर्जित कर पाती है कि वह अपने पूर्व-प्रेमी से कह सके।

Scanned with CamScanner

'हम दोनों भिन्न वर्ण
भिन्न जाति, भिन्न रूप
भिन्न धर्मभाव पर
केवल अपनाव से प्राणों से एक थे।'[7]

शिक्षा के नए वातावरण में स्त्री और पुरुष के साहचर्य से प्रेम का एक नया स्वरूप सामने आया।जिसमें अपने प्रेम को व्यक्त करने के लिए किसी माध्यम का सहारा नहीं लिया गया, अपितु स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया गया कि 'बालिका मेरी मनोरम मित्र थी'।[8] वही महादेवी वर्मा के काव्य में सामंती बंधनों से नारी के स्वातंत्र्य भाव और मुक्ति की छटपटाहट सर्वत्र दिखलाई पड़ती है ---

'मैं नीर भरी दुख की बदली
स्पंदन में चीर निस्पंद बसा
क्रंदन में आहत विश्व हँसा
नयनों मे दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली'[9]

नवजागरण काल में नारी के प्रति एक नई दृष्टि विकसित हुई थी। विभिन्न सामाजिक परम्पराओं के मूल्यांकन के साथ ही नारी की सामाजिक स्थिति का भी मूल्यांकन किया गया। छायावाद की नारी दृष्टि भी इसी मूल्यांकन का परिणाम है। नारी के प्रति इस बदली दृष्टि का परिणाम बदले स्त्री–पुरुष सबन्धों के रूप में भी दिखाई पड़ता है। स्त्री केवल पत्नी के रूप में ही नहीं प्रिय, प्रेयसी, सखी या सजनी के रूप में भी पहचान प्राप्त करती है। इसी क्रम में छायावादियों की उस भावदृष्टि का विकास भी देखा जा सकता है जिसे हम सामंत विरोधी कह सकते हैं। सम्राट अष्टम एडवर्ड जब अपनी प्रेमिका के लिए सम्राट पद त्याग देते है तो निराला कहते हैं-

'मानव-मानव से नहीं भिन्न
निश्चय हो श्वेत कृष्ण अथवा
वह नहीं क्लिन्न
भेद कर पंक
निकलता कमाल जो मानव का
वह निष्कलंक हो कोई सर।'[10]

इसी तरह छायावादी प्रेमनुभूति भी एक नए रूप में है। रीतिकाल की तरह शरीर यहाँ लक्ष्य नहीं है भक्तिकाल की तरह तिरस्कृत भी नहीं है, बल्कि यह वह भूमि है जहाँ स्त्री-पुरुष अपने रागात्मक सबंध की जैविकी का सानंद उपभोग करते हैं। छायावादी प्रेमानुभूति न केवल शरीर व मन दोनों की प्रतिक्रियाओं को समान स्थान देती है बल्कि इसका हर पक्ष कहीं न कहीं अपने युग में नया रूपकार लेते मानवीय सम्बन्धों के यथार्थ से जुड़ा है। श्रद्धा और मनु का मिलन जिसने मन से लेकर शरीर तक की लंबी यात्रा तय की यह मिलन मध्ययुगीन स्त्री-पुरुष सम्बन्धों से सर्वथा विपरीत बिन्दु प्रस्तुत करता है। डॉ. शम्भूनाथ के शब्दों में –"प्रेम मनुष्य को व्यक्तिवाद से मुक्त कर देता है, उसका पुनर्निर्माण करता है, उसे व्यापक सौंदर्यबोध की ओर ले जाता है, छायावाद का प्रेम ऐसा ही था।"[11]

महादेवी की प्रेमानुभूति छायावादी प्रेम के दूसरे कोण को सम्पन्न करती है। यह कोण है स्त्री की दृष्टि से देखे-समझे और भोगे संसार का, स्त्री के अनुभव का। इसके माध्यम से उस युग की स्त्री मानसिकता में

Scanned with CamScanner

घटित हो रहे परिवर्तनों को समझा जा सकता है, जिसके एक ओर लज्जालु किशोर भावना है, किन्तु इसके बाद के सारे प्रेमानुभाव में एक ही पक्ष बार-बार उभरता है और वह है नवजागृत नारी विश्वास का, जिसके चलते वह अपने को पुरुष के अस्तित्व में लय नहीं करना चाहती –

'सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं।'[12]

छायावाद का समय इतिहास के पुनरान्वेषण का भी समय था। वैसे हर पराधीन देश में राष्ट्रीयता का उदय पुनुरुत्थान भावना के साथ होता है। अंग्रेज रोमांटिक कवियों ने भी विगत सांस्कृतिक वैभव को प्रलुब्ध दृष्टि से देखा था और औद्योगिक सभ्यता के निर्मम प्रसार में मानवीय सम्बन्धों को आदिम रागात्मकता की ओर लौटने का संदेश दिया था। एक बात यहाँ साफ करना जरूरी है कि अंग्रेज कवि गुलाम नहीं थे उनके सामने औद्योगिक सभ्यता का विराट भ्रमजाल था जबकि भारत में स्थितियाँ एक-दम उलट थीं यहाँ हम विगत सांस्कृतिक वैभव में आदिम रागात्मकता के साथ-साथ पौरुष भी ढूंढ रहे थे और इस क्रम में ऐतिहासिक विसंगति का शिकार भी हो रहे थे। छायावादी साहित्य एक पराधीन देश की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। भारत के अतीत की काफी गौरवशाली छवियाँ हैं, सभ्यता संस्कृति का सुंदर इतिहास है ऐसे में जब देश साम्राज्यवाद और नव पूंजीवाद के लौहतन्त्र में जकड़ता जा रहा था तब वर्तमान के पराभव में शक्ति अर्जित करने के लिए अतीत की ओर लौटना छायावादी संस्कार बन गया। अतीत के प्रति अत्याधिक मोहग्रस्तता के काफी दुष्परिणाम भी हमें झेलने पड़े क्योंकि वर्तमान दुश्मन से लड़ने के लिए हमने जिन प्रतीकों का चयन किया वे बहुत ही अतार्किक थे। यहाँ पर एक बड़ा सवाल हमारे सामने खड़ा होता है कि जिस 1857 ने भारतीय नवजागरण के पनपने में इतनी बड़ी भूमिका निभाई उसकी शानदार परंपरा हमारी राजनीति और साहित्य का हिस्सा क्यों नहीं बन सकी?

छायावादी कविता में भी हम इस कमी को महसूस कर सकते हैं। छायावादी कविता अपने समय की राजनीति से गहरे तक प्रभावित है यह अकारण नहीं है कि एक तरफ तिलक शिवाजी उत्सव और गणेश पूजा का आरंभ करते है तो दूसरी तरफ निराला 'शिवाजी का पत्र', प्रसाद 'महाराणा का महत्व', 'पेशोला की प्रतिध्वनि' जैसी कविता लिखते हैं। ध्यान से देखा जाय तो यह सारे प्रतीक हिन्दू प्रतीक हैं जो सांझी लड़ाई में बहुत फायदेमंद नहीं साबित हुए। बहरहाल यह छ्यवाद का एक अनुद्धृत पक्ष है जो कहीं से भी उसका मुख्य प्रतिपाद्य नहीं है अतः इसे छायावादी चेतना के मूल्याकन का आधार नहीं बनाया जा सकता। छायावादी कविता के मूल्यांकन का आधार तो उसकी मुक्तिकामी चेतना ही हो सकती है जो की उक्त प्रतीकों का भी प्रतिपाद्य है। 'पेशोला की प्रतिध्वनि' में प्रसाद कहते हैं –

'आह! इस खेवा की!
कौन थामता है पतवार ऐसे अंधड़ में
अंधकार पारावार गहन नियति सा
उमड़ रहा है, ज्योति रेखा हीं क्षुब्ध हो।'[13]

अंग्रेजी साम्राज्यवाद की नीति केवल भारत के आर्थिक शोषण तक सीमित नहीं थी बल्कि उसका उद्देश्य भारतीय जनता के जातीय और सांस्कृतिक भावों को नष्ट कर उसे आत्महीनता की दशा में धकेल देना भी था। इसीलिए तत्कालीन भारत में राजनीतिक स्वतन्त्रा प्राप्त करने के लिए जनता को सांस्कृतिक बोध कराना आवश्यक था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस तथ्य को उद्घाटित करते हुए लिखा है – ''छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक चेतना का काव्य था, जिसमें कवियों की भीतरी आकुलता ने ही नवीन भाषा-शैली में

Scanned with CamScanner

अपने को अभिव्यक्त किया। सभी उल्लेखनीय कवियों मे थोड़ी-बहुत आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की आकुलता थी। जिन कवियों ने शास्त्रीय और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का भाव दिखाया था, उनके इस भाव का कारण तीव्र सांस्कृतिक चेतना ही थी।''[14] उदाहरण के लिए हम निराला को ले सकते हैं। निराला भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन और राजनीतिक पराभव का कारण ही नहीं उपस्थित करते बल्कि संघर्ष के भावों द्वारा पुनर्जागरण की प्रेरणा भी देते हैं। निराला की ''जागो फिर एक बार'' कविता को छायावादी सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है।

सन् 1920 से लेकर छायावाद के उत्कर्ष काल सन 1936 तक भारतीय राजनीति में गांधी जी का उत्कर्ष काल माना जा सकता है इसलिए कई विद्वान छायावाद को गांधीवादी विचारों का राजनीतिक प्रतिफलन मानते हैं जैसा की डॉ. नगेद्र ने लिखा है – ''यह ठीक है कि छायावाद का जन्म दक्षिण और वामपंथ के इस संघर्ष यहाँ तक की गांधीवाद के जन्म से ही पहले हो चुका था, परंतु फिर भी इसमें संदेह नहीं कि उसका मूल आधार आदर्शवादी चिंताधारा ही है जो गांधीवाद अथवा समस्त दक्षिणपक्षीय विचारधारा का ही मूल आधार है।''[15] लेकिन गहराई से देखें तो हम पाते हैं कि सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्रीय मुक्ति के लिए संघर्ष का रास्ता अपनाने की पद्धति में छायावाद गांधीवाद से एकदम अलग रास्ता चुनता है। गांधीवादी विचारधारा राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्ति के लिए किसान और जमींदार, उच्च और निम्न वर्ग, पूंजीपति और मजदूर को एक ही रास्ते पर चलकर सत्य और अहिंसा की विचारधारा के माध्यम से वर्ग समन्वय और हृदय परिवर्तन जैसे सिद्धांतों का पाठ पढ़ाती है। छायावादी कवि इन सिद्धांतों की हकीकत समझते हैं वे इन वर्गों के आपसी अंतर्विरोध को उद्घाटन कराते हुए उपेक्षित निम्न वर्ग, किसान और मजदूर की स्वाधीनता को ही असली स्वाधीनता मानतें हैं। कहने का तात्पर्य है कि समाजवादी यथार्थवादी चेतना भी छायावाद का एक हिस्सा है हाँ एक बात जरूर है कि वह उसके घोषणा-पत्र में शामिल नहीं की गई है। यहाँ बात को स्पष्ट करने के लिए निराला की कविता 'बादल राग-6' का उदाहरण सबसे बेहतर रहेगा। निराला की यह कविता 1924 में प्रकाशित होती है। इस कविता की खास बात यह है कि सीधे-सीधे पूंजीवाद साम्राज्यवाद सामंतवाद के खिलाफ क्रांति की वकालत करती है और इस बात को भी स्थापित करती है कि क्रांति से 'छोटे ही शोभा पाते हैं' निराला को व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन का पूरा भरोसा है वैसे ही जैसे क्रांतिकारियों को होता है –

'अशनि-पात से शायित उन्नत शत-शत वीर,
क्षत-विक्षत हत अचल शरीर,
गगन-स्पर्शी स्पर्धा-धीर।
हँसते है छोटे पौधे लघुभार-
शस्य अपार,
हिल-हिल
खिल-खिल,
हाथ मिलाते,
तुझे बुलाते,
विप्लव-रव से छोटे ही शोभा पाते।
रुद्ध कोष है, क्षुब्ध तोष,
अंगना-अंग से लिपटे भी
आतंक-अंक पर काँप रहे हैं

Scanned with CamScanner

धनी, वज्र-गर्जन से बादल!
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर!'[16]

भारत में आधुनिकता के आगमन की प्रक्रिया काफी जटिल और भिन्न है उसमें ढेर सारी सकारात्मकता है तो कुछ नकारात्मकता भी है और छायावादी साहित्य दोनों अर्थों में इस प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करता दिखाई पड़ता है। इस लेख के अंतिम बिन्दु के रूप में हम छायावादी रहस्यवाद और आधुनिकता से उसके संबंध की पड़ताल करेंगे। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार - ''रहस्य भावना प्राचीन है, लेकिन रहस्यवाद आधुनिक है और हिन्दी में छायावादी काव्यान्दोलन से संबद्ध है।''[17]

छायावाद का आधार था नव्यवेदांत अर्थात वेदान्त दर्शन की नवीन युग के अनुरूप पुनर्व्याख्या। यह व्याख्या अद्वैत दर्शन पर आधारित थी, किन्तु यह अद्वैत दर्शन का प्राचीन वैयक्तिक साधनपरक तत्वों से हटा नवीन समाजिकता के धरातल पर अवतरण था। छायावाद ने अपने युग के यांत्रिक भौतिकवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त की। यांत्रिक भौतिकवाद प्रकृति और मनुष्य के बीच उपयोगितामूलक व्यवसायिक संबंध स्थापित करता था, छायावाद ने प्रकृति को एक चेतन व्यक्तित्व, विराट सत्ता के रूप में देखा। छायावादी रहस्यवाद के वस्तुगत स्रोतों को देखें तो पहला ही तत्व कवि में आत्मप्रसार तथा आत्मविस्तार की अदम्य आकांक्षा के रूप में दिखाई देता है। वास्तव में यह सभी प्रकार की देशकालगत बहिरंग व अंतरंग रूढ़ियों से मुक्ति की कामना के रूप में तथा कहीं रूप और नाम की सीमा में घिरे जगत से निर्बंध होने की लालसा के रूप में आता है। डॉ. नामवर सिंह इसका सामाजिक आधार स्पष्ट करते हुए लिखते हैं - 'यह जो अज्ञात और असीम की अभिलाषा है, वह वस्तुतः ज्ञात सीमाओं के असंतोष से उत्पन्न हुई है, और यह असंतोष तथा अभिलाषा केवल दिमागी ऐय्याशी नहीं है, बल्कि इसका सामाजिक आधार है, यह असंतोष और महत्वाकांक्षा उस मध्यवर्गीय व्यक्ति की है जो मध्ययुगीन पारिवारिक और सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर उन्मुक्त वातावरण में साँस लेने के लिए आकुल हो रहा था।'[18]

मध्यकाल की रहस्यभावना में मुक्ति की कामना इहलोक के बंधनों से थी, परलोक के लिए, किन्तु छायावादी रहस्यभावना में कवि इहलोक के बंधन इहलोक के लिए ही तोड़ना चाहता है। उसकी मुक्ति का सारा प्रयोजन लौकिक और मानवीय है। इसी प्रेरणा के वशीभूत होकर पंचवटी प्रसंग में राम कहते हैं –

'छोटे से घर की लघुसीमा में
बंधे हैं क्षुद्रभाव
यह सच है प्रिये
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही निः सीम भू पर।'[19]

निराला का वेदान्त दर्शन से जुड़ाव आरंभ से ही रहा, लेकिन यह वेदान्त गतिहीन, जड़, लोकनिरपेक्ष न होकर सामाजिक आधार पर प्रतिष्ठित है। कवि के भीतर एक द्वंद्व चलता है -जगत को माया समझने और उसका त्याग करने की सदियों से चली आ रही अवधारणा और जगत के शोषित, पीड़ित मनुष्य को लेकर, लेकिन इस द्वंद्व से निकलता हुआ कवि मानवमात्र का पक्ष लेता है और इसमें उसे अधिवास छूटने का भी कोई दुख नहीं है। प्रकृति के अनंत यौवन और सुषमा और मनुष्य जगत के दीन-हीन जीवन के बीच महादेवी प्रश्न करती हैं –

Scanned with CamScanner

'देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को
तेरी चिर यौवन सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ।'[20]

यही प्रश्न कामायनी का मनु कुछ इस प्रकार करता है - 'वन गुहा कुंज-मरुअंचल में हूँ खोज रहा अपना विकास।' 21 यह विकास मनु का अपना नहीं, मनुष्यमात्र का है। वह प्रगति आकांक्षी मनुष्य है जो कहीं रुकना नहीं चाहता, एक लालसा उसे निरंतर उद्वेलित किए रहती है और यह लालसा अपने को खोजने, अपने और इसके माध्यम से मनुष्य मात्र के संधान की लालसा है, लेकिन इसके साथ ही मनु आधुनिक, औद्योगिक पूंजीवादी युग की स्पर्धा, स्वार्थ और प्रगति की कल्पनाएं भी उभारता है। कामायनी की मूल चिंता मनुष्य की चेतना में पड़ी दरार ज्ञान, इच्छा और क्रिया में असंगति को दूर करने की और उन्हें सामरस्य में ढालने की है। मनु की प्रगति कामना उसे मनुष्य सभ्यता के विकास के विभिन्न चरणों वन्य-जीवन, कृषि-उद्योग में ले जाती है। वह इनके निर्माण के लिए उत्तरदायी है, उसकी चेतना का विकास उसे श्रद्धा और बुद्धि के द्वंद्व से मुक्तकर समरसता की भूमि पर ले जाता है। वस्तुतः यह समरसता मानव -समाज की समरसता है ,जहाँ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है और यही प्रसाद के समरसता दर्शन का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य है।

वस्तुतः छायावाद ने अपने समय की बहुत सी रूढ़ियों को तोड़ा था, लेकिन रूढ़ियाँ मनुष्य निर्मित होते हुए भी अपनी सघनता और दीर्घगामिता में मनुष्य के ही वश से बाहर हो जाती हैं। वे मनुष्य के अन्तर्मन में ग्रंथियों, कुंठाओ के रूप में पैठ जाती हैं। छायावादी कवि अपनी अपरिसीम जीवनाकांक्षा और सौन्दर्य चेतना को सामाजिक विधि-निषेधों के तले दबकर फासिल बनते जाने की प्रक्रिया को सौंप नहीं सकता था और खुलकर अभिव्यक्ति भी नहीं हो सकती थी, क्योंकि तत्कालीन समाज इसके अनुकूल नहीं था, अतः वह अज्ञात की शरण में जाता है और रहस्य के रूप में अपने विचारों को वाणी देता है।

इस तरह से हम देखते हैं कि हिन्दी जगत में आधुनिकता की चेतना के विस्तार में छायावाद की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। छायावाद ने परम्पराओं का मूल्यांकन करते हुए समाज के लिए नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा भी की। जिस वैज्ञानिक और तार्किक सोच के साथ छायावादी काव्य आकार लेता है वह निश्चित ही आगे आने वाले कवियों के लिए एक आधार का निर्माण भी करता है।

हिन्दी विभाग
शासकीय नवीन कन्या महाविद्यालय
बैकुंठपुर, जिला कोरिया, छत्तीसगढ़-४९७३३५

सन्दर्भ -

1. डॉ. रामधारी सिंह दिनकर : आधुनिक बोध, पंजाबी पुस्तक भंडार, दिल्ली प्रथम संस्करण 1973 पृ. 44
2. स. परमानंद श्रीवास्तव : समकालीन हिन्दी आलोचना, साहित्य अकादमी ,डिल्ले प्रथम संस्करण 1998 पृ. 254
3. सं रामकली सर्राफ : भारत दुर्दशा, विश्वविद्यालय प्रकाशन 2002 पृ. 6
4. डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी : आधुनिक कविता यात्रा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद तृतीय संस्करण -2005 (भूमिका)
5. स. नन्द किशोर नवल : निराला रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली चतुर्थ संस्करण-2006 (भाग-1) पृ- 47-48
6. डॉ. बच्चन सिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभरती प्रकाशन, इलाहाबाद-1999 पृ. 140
7. स. नन्द किशोर नवल : निराला रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली चतुर्थ संस्करण-2006 (भाग-1) पृ. 328

Scanned with CamScanner

8. सुमित्रनंदन पंत : पल्लव, राजकमल प्रकाशन-दिल्ली, नौवा संस्करण 1993 पृ. 56
9. महादेवी वर्मा : सांध्यगीत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-2002 पृ. 53
10. निराला रचनावली भाग-1 पृ. 339
11. डॉ. शम्भुनाथ : दूसरे नवजागरण की ओर, ज्ञानभारती दिल्ली-1993 पृ. 200
12. महादेवी वर्मा : सांध्यगीत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-2002 पृ. 66
13. जयशंकर प्रसाद : लहर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-2002 पृ. 67
14. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य : उदभव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण-1990 पृ. 243
15. डॉ. नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ.11
16. सं. नन्द किशोर नवल : निराला रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली चतुर्थ संस्करण -2006 (भाग-1) पृ-135-136
17. डॉ. नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-2008 पृ. 38
18. वहीं पृ. 43
19. स. नन्द किशोर नवल : निराला रचनावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली चतुर्थ संस्करण -2006 (भाग-1) पृ- 51
20. सं. निर्मला जैन : महादेवी साहित्य, समग्र प्रकाशन, नई दिल्ली 2000 पृ. 132
21. जयशंकर प्रसाद : कामायनी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1989 (कर्म सर्ग) पृ. 103 बौद्ध धर्म

Scanned with CamScanner

मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

ISSN 0974-0066
(अंक-74, जनवरी-जून, 2018)

संरक्षक
प्रो. राघवेन्द्र पी. तिवारी
कुलपति

प्रधान सम्पादक
प्रो. अम्बिकादत्त शर्मा

सम्पादक
प्रो. निवेदिता मैत्रा
डॉ. पंकज चतुर्वेदी
डॉ. आशुतोष कुमार मिश्र

प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. छबिल कुमार मेहेर

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
सागर (मध्यप्रदेश) - 470003
दूरभाष : (07582) 264455
ई-मेल : madhyabharti.2016@gmail.com

Scanned with CamScanner